

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

श्राद्धमें पितरोंके तृप्तिविषयका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

किंस्विद् दत्तं पितृभ्यो वै भवत्यक्षयमीश्वर ।
किं हविश्चिररात्राय किमानन्त्याय कल्पते ॥ १ ॥
युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! पितरोंके लिये दी हुई कौन-सी वस्तु अक्षय होती है ? किस वस्तुके दानसे पितर अधिक दिनतक और किसके दानसे अनन्त कालतक तृप्त रहते हैं ? ॥ १ ॥

भीष्म उवाच

हवींषि श्राद्धकल्पे तु यानि श्राद्धविदो विदुः ।
तानि मे शृणु काम्यानि फलं चैव युधिष्ठिर ॥ २ ॥
भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर ! श्राद्धवेत्ताओंने श्राद्ध-कल्पमें जो हविष्य नियत किये हैं, वे सब-के-सब काम्य हैं । मैं उनका तथा उनके फलका वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ २ ॥
तिलैर्ब्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलैस्तथा ।
दत्तेन मासं प्रायन्ते श्राद्धेन पितरो नृप ॥ ३ ॥
नरेश्वर ! तिल, ब्रीहि, जौ, उड़द, जल और फल-मूलके द्वारा श्राद्ध करनेसे पितरोंको एक मासतक तृप्ति बनी रहती है ॥

वर्धमानतिलं श्राद्धमक्षयं मनुजब्रवीत् ।
सर्वेष्वेव तु भोज्येषु तिलाः प्राधान्यतः स्मृताः ॥ ४ ॥

मनुजीका कथन है कि जिस श्राद्धमें तिलकी मात्रा अधिक रहती है, वह श्राद्ध अक्षय होता है । श्राद्ध सम्बन्धी सम्पूर्ण भोज्य-पदार्थोंमें तिलोंका प्रधानरूपसे उपयोग बताया गया है ॥ ४ ॥

गव्येन दत्तं श्राद्धे तु संवत्सरमिहोच्यते ।
यथा गव्यं तथा युक्तं पायसं सर्पिषा सह ॥ ५ ॥

यदि श्राद्धमें गायका दही दान किया जाय तो उससे पितरोंको एक वर्षतक तृप्ति होती बताय गयी है । गायके दहीका जैसा फल बताया गया है, वैसा ही घृतमिश्रित खीरका भी समझना चाहिये ॥ ५ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें श्राद्धकल्पविषयक अष्टासवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

एकोनवतितमोऽध्यायः

विभिन्न नक्षत्रोंमें श्राद्ध करनेका फल

भीष्म उवाच

यमस्तु यानि श्राद्धानि प्रोवाच शशविन्दवे ।
तानि मे शृणु काम्यानि नक्षत्रेषु पृथक् पृथक् ॥ १ ॥

गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति पितृगीता युधिष्ठिर ।

सनत्कुमारो भगवान् पुरा मय्यभ्यभाषत ॥ ६ ॥

युधिष्ठिर ! इस विषयमें पितरोंद्वारा गायी हुई गाथाका भी विश्व पुरुष गान करते हैं । पूर्वकालमें भगवान् सनत्कुमार-ने मुझे यह गाथा बतायी थी ॥ ६ ॥

अपि नः स्वकुले जायाद् यो नो दद्यात्त्रयोदशीम् ।

मघासु सर्पिःसंयुक्तं पायसं दक्षिणायने ॥ ७ ॥

पितर कहते हैं—‘क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुरुष उत्पन्न होगा, जो दक्षिणायनमें आश्विन मासके कृष्णपक्षमें मघा और त्रयोदशी तिथिका योग होनेपर हमारे लिये घृत-मिश्रित खीरका दान करेगा ? ॥ ७ ॥

आजेन वापि लौहेन मघास्वेव यतव्रतः ।

हस्तिच्छायासु विधिवत् कर्णव्यजनवीजितम् ॥ ८ ॥

‘अथवा वह नियमपूर्वक व्रतका पालन करके मघा नक्षत्रमें ही हाथीके शरीरकी छायामें बैठकर उसके कानरूपी व्यजनसे हवा लेता हुआ अन्न-विशेष-चावलका बना हुआ पायस या लौहशाकसे विधिपूर्वक हमारा श्राद्ध करेगा ? ॥ ८ ॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।

यत्रासौ प्रथिनो लोकेष्वक्षय्यकरणो वटः ॥ ९ ॥

‘बहुत-से पुत्र पानेकी अभिलाषा रखनी चाहिये, उनमेंसे यदि एक भी उस गया-तीर्थकी यात्रा करे, जहाँ लोकविख्यात अक्षयवट विद्यमान है, जो श्राद्धके फलको अक्षय बनाने-वाला है ॥ ९ ॥

आपो मूलं फलं मांसमन्नं वापि पितृक्षये ।

यत् किञ्चिन्मधुसम्मिश्रं तदानन्त्याय कल्पते ॥ १० ॥

‘पितरोंकी क्षय-तिथिको जल, मूल, फल, उसका गूदा और अन्न आदि जो कुछ भी मधुमिश्रित करके दिया जाता है, वह उन्हें अनन्तकालतक तृप्ति देनेवाला है’ ॥ १० ॥

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! यमने राजा

शशविन्दुको भिन्न-भिन्न नक्षत्रोंमें किये जानेवाले जो काम्य श्राद्ध बताये हैं; उनका वर्णन मुझसे सुनो ॥ १ ॥

श्राद्धं यः कृत्तिकायोगे कुर्वीत सततं नरः ।

अग्नीनाधाय सापत्यो यजेत विगतज्वरः ॥ २ ॥

जो मनुष्य सदा कृत्तिका नक्षत्रके योगमें अग्निकी स्थापना करके पुत्रसहित श्राद्ध या पितरोंका यजन करता है, वह रोग और चिन्तासे रहित हो जाता है ॥ २ ॥

अपत्यकामो रोहिण्यां तेजस्कामो मृगोत्तमे ।

कूरकर्मा ददच्छ्राद्धमाद्रायां मानवो भवेत् ॥ ३ ॥

संतानकी इच्छावाला पुरुष रोहिणीमें और तेजकी कामनावाला पुरुष मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करे। आद्रा नक्षत्रमें श्राद्धका दान देनेवाला मनुष्य कूरकर्मा होता है (इसलिये आद्रा नक्षत्रमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये) ॥ ३ ॥

धनकामो भवेन्मर्त्यः कुर्वच्छ्राद्धं पुनर्वसौ ।

पुष्टिकामोऽथ पुष्येण श्राद्धमीहेत मानवः ॥ ४ ॥

धनकी इच्छावाले पुरुषको पुनर्वसु नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये। पुष्टिकी कामनावाला पुरुष पुष्यनक्षत्रमें श्राद्ध करे॥

आश्लेषायां ददच्छ्राद्धं धीरान् पुत्रान् प्रजायते ।

ज्ञातीनां तु भवेच्छ्रेष्ठो मघासु श्राद्धमावपन् ॥ ५ ॥

आश्लेषामें श्राद्ध करनेवाला पुरुष धीर पुत्रोंको जन्म देता है। मघामें श्राद्ध एवं पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अपने कुटुम्बी जनोंमें श्रेष्ठ होता है ॥ ५ ॥

फलगुनीषु ददच्छ्राद्धं सुभगः श्राद्धदो भवेत् ।

अपत्यभागुत्तरासु हस्तेन फलभाग् भवेत् ॥ ६ ॥

पूर्वाफाल्गुनीमें श्राद्धका दान देनेवाला मानव सौभाग्यशाली होता है। उत्तराफाल्गुनीमें श्राद्ध करनेवाला संतानवान् और हस्तनक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला अभीष्ट फलका भागी होता है ॥ ६ ॥

चित्रायां तु ददच्छ्राद्धं लभेद् रूपवतः सुतान् ।

स्वातियोगे पितृनर्च्य वाणिज्यमुपजीवति ॥ ७ ॥

चित्रामें श्राद्धका दान करनेवाले पुरुषको रूपवान् पुत्र प्राप्त होते हैं। स्वातीके योगमें पितरोंकी पूजा करनेवाला वाणिज्यसे जीवन-निर्वाह करता है ॥ ७ ॥

बहुपुत्रो विशाखासु पुत्रमीहन् भवेन्नरः ।

अनुराधासु कुर्वाणो राजचक्रं प्रवर्तयेत् ॥ ८ ॥

विशाखामें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य यदि पुत्र चाहता हो तो बहुसंख्यक पुत्रोंसे सम्पन्न होता है। अनुराधामें श्राद्ध करनेवाला पुरुष दूसरे जन्ममें राजमण्डलका शासक होता है ॥ ८ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पे एकोनवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें श्राद्धकल्पविषयक नवासीवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ८९ ॥

आधिपत्यं व्रजेन्मर्त्यो ज्येष्ठायामपवर्जयन् ।

नरः कुरुकुलश्रेष्ठ ऋद्धो दमपुरःसरः ॥ ९ ॥

कुरुकुलश्रेष्ठ ! ज्येष्ठा नक्षत्रमें इन्द्रियसंयमपूर्वक पिण्डदान करनेवाला मनुष्य समृद्धिशाली होता है और प्रभुत्व प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

मूले त्वारोग्यमृच्छेत यशोऽऽषाढासु चोत्तमम् ।

उत्तरासु त्वषाढासु वीतशोकश्चरेन्महीम् ॥ १० ॥

मूलमें श्राद्ध करनेसे आरोग्यकी प्राप्ति होती है और पूर्वाषाढामें उत्तम यशकी। उत्तराषाढामें पितृयज्ञ करनेवाला पुरुष शोकशून्य होकर पृथ्वीपर विचरण करता है ॥ १० ॥

श्राद्धं त्वभिजिता कुर्वन् भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात् ।

श्रवणेषु ददच्छ्राद्धं प्रेत्य गच्छेत् स सद्गतिम् ॥ ११ ॥

अभिजित् नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला वैद्यविषयक सिद्धि पाता है। श्रवण नक्षत्रमें श्राद्धका दान देनेवाला मानव मृत्युके पश्चात् सद्गतिको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

राज्यभागी धनिष्ठायां भवेत् नियतं नरः ।

नक्षत्रे वारुणे कुर्वन् भिषक्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

धनिष्ठामें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य नियमपूर्वक राज्यका भागी होता है। वारुण नक्षत्र-शतभिषामें श्राद्ध करनेवाला पुरुष वैद्यविषयक सिद्धिको पाता है ॥ १२ ॥

पूर्वप्रोष्ठपदाः कुर्वन् बहून् विन्दत्यजाविकान् ।

उत्तरासु प्रकुर्वाणो विन्दते गाः सहस्रशः ॥ १३ ॥

पूर्वभाद्रपदामें श्राद्ध करनेवाला बहुत-से भेड़-बकरोंका लाभ लेता है और उत्तराभाद्रपदामें श्राद्ध करनेवाला सहस्रों गौएँ पाता है ॥ १३ ॥

बहुकुप्यकृतं वित्तं विन्दते रेवतीं श्रितः ।

अश्विनीष्वश्वान् विन्देत भरणीष्वायुरुत्तमम् ॥ १४ ॥

श्राद्धमें रेवतीका आश्रय लेनेवाला (अर्थात् रेवतीमें श्राद्ध करनेवाला) पुरुष सोने-चाँदीके सिवा अन्य नाना प्रकारके धन पाता है। अश्विनीमें श्राद्ध करनेसे घोड़ोंकी और भरणीमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे उत्तम आयुकी प्राप्ति होती है ॥ १४ ॥

इमं श्राद्धविधिं श्रुत्वा शशबिन्दुस्तथाकरोत् ।

अक्लेशेनाजयच्चापि महीं सोऽनुशशास ह ॥ १५ ॥

इस श्राद्धविधिका श्रवण करके राजा शशबिन्दुने वही किया। उन्होंने बिना किसी क्लेशके ही पृथ्वीको जीता और उसका शासनसूत्र अपने हाथमें ले लिया ॥ १५ ॥

नवतितमोऽध्यायः

श्राद्धमें ब्राह्मणोंकी परीक्षा, पंक्तिदूषक और पंक्तिपावन ब्राह्मणोंका वर्णन, श्राद्धमें लाख मूर्ख ब्राह्मणोंको भोजन करानेकी अपेक्षा एक वेदवेत्ताको भोजन करानेकी श्रेष्ठताका कथन

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशेभ्यः प्रदातव्यं भवेच्छ्राद्धं पितामह ।
द्विजेभ्यः कुरुशार्दूल तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! कैसे ब्राह्मणको श्राद्धका दान (अर्थात् निमन्त्रण) देना चाहिये ! कुरुश्रेष्ठ ! आप इसका मेरे लिये स्पष्ट वर्णन करें ॥ १ ॥

भीष्म उवाच

ब्राह्मणान् न परीक्षेत क्षत्रियो दानधर्मवित् ।
दैवे कर्मणि पित्र्ये तु न्यायमाहुः परीक्षणम् ॥ २ ॥

भीष्मजीने कहा—राजन् ! दान-धर्मके ज्ञाता क्षत्रियको देवसम्बन्धी कर्म (यज्ञ-यागादि) में ब्राह्मणकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये; किंतु पितृकर्म (श्राद्ध) में उनकी परीक्षा न्यायसंगत मानी गयी है ॥ २ ॥

देवताः पूजयन्तीह दैवेनैवेह तेजसा ।
उपेत्य तस्माद् देवेभ्यः सर्वेभ्यो दापयेन्नरः ॥ ३ ॥

देवता अपने दैव तेजसे ही इस जगत्में ब्राह्मणोंका पूजन (समादर) करते हैं; अतः देवताओंके उद्देश्यसे सभी ब्राह्मणोंके पास जाकर उन्हें दान देना चाहिये ॥ ३ ॥

ध्राद्धे त्वथ महाराज परीक्षेद् ब्राह्मणान् बुधः ।
कुलशीलवयोरूपैर्विद्ययाभिजनेन च ॥ ४ ॥

किंतु महाराज ! श्राद्धके समय विद्वान् पुरुष कुल, शील (उत्तम आचरण), अवस्था, रूप, विद्या और पूर्वजोंके निवासस्थान आदिके द्वारा ब्राह्मणकी अवश्य परीक्षा करे ॥

तेषामन्ये पङ्क्तिदूषास्तथान्ये पङ्क्तिपावनाः ।
अपाङ्क्तेयास्तु ये राजन् कीर्तयिष्यामि ताञ्शृणु ॥ ५ ॥

ब्राह्मणोंमें कुछ तो पंक्तिदूषक होते हैं और कुछ पंक्तिपावन । राजन् ! पहले पंक्तिदूषक ब्राह्मणोंका वर्णन करूँगा, सुनो ॥ ५ ॥

कितवो भ्रूणहा यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः ।
ग्रामप्रेष्यो वार्धुषिको गायनः सर्वविक्रयी ॥ ६ ॥

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
सामुद्रिको राजभृत्यस्तैलिकः कूटकारकः ॥ ७ ॥

पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ।
अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पं यश्चोपजीवति ॥ ८ ॥

पर्वकारश्च सूची च मित्रधुक पारदारिकः ।
अवतानामुपाध्यायः काण्डपृष्ठस्तथैव च ॥ ९ ॥

श्वभिश्च यः परिक्रामेद् यः शुना दष्ट एव च ।
परिवित्तिश्च यश्च स्याद् दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ १० ॥
कुशीलवो देवलको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ।
ईदृशैर्ब्राह्मणैर्भुक्तमपाङ्क्तेयैर्युधिष्ठिर ॥ ११ ॥
रक्षांसि गच्छते हव्यमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ।

जुआरी, गर्भहत्यारा, राजयक्ष्माका रोगी, पशुपालन करनेवाला, अपढ़, गाँव-नरका हरकाग, सूदखोर, गवैया, सव तरहकी चीज बेचनेवाला, दूसरीका घर फूँकनेवाला, विष देनेवाला, माताद्वारा पतिके जीते-जी दूसरे पतिसे उत्पन्न किये हुए पुत्रके घर भोजन करनेवाला, सोमरस बेचनेवाला, सामुद्रिक विद्या (हस्तरखा) से जीविका चलानेवाला, राजाका नौकर, तेल बेचनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, पितासे झगड़ा करनेवाला, जिसके घरमें जार पुरुषका प्रवेश हो वह, कलङ्कित, चौर, शिल्पजीवी, बहुरूपिया, चुगलखोर, मित्रद्रोही, परस्त्रीलम्पट, व्रतारहित मनुष्योंका अध्यापक, हथियार बनाकर जीविका चलानेवाला, कुत्ते साथ लेकर घूमनेवाला, जिसे कुत्तेने काटा हो वह, जिसके छोटे भाईका विवाह हो गया हो ऐसा अविवाहित बड़ा भाई, चर्मरोगी, गुरुपत्नीगामी, नटका काम करनेवाला, देवमन्दिरमें पूजासे जीविका चलानेवाला और नक्षत्रोंका फल बताकर जीनेवाला—ये सभी ब्राह्मण पंक्तिसे बाहर रखने योग्य हैं ! युधिष्ठिर ! ऐसे पंक्तिदूषक ब्राह्मणोंका खाया हुआ हविष्य राक्षसोंको मिलता है, ऐसा ब्रह्मवादी पुरुषोंका कथन है ॥ ६-११ ॥

श्राद्धं भुक्त्वा त्वर्ध्यायित वृषलीतल्पगश्च यः ॥ १२ ॥
पुरीषे तस्य ते मासं पितरस्तस्य शेरते ।

जो ब्राह्मण श्राद्धका भोजन करके फिर उस दिन वेद पढ़ता है तथा जो वृषली स्त्रीसे समागम करता है, उसके पितर उस दिनसे लेकर एक मासतक उसीकी विष्टाओंमें शयन करते हैं ॥ १२ ॥

सोमविक्रयिणे विष्टा भिषजे पूयशोणितम् ॥ १३ ॥
नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं च वार्धुषे ।

यत्तु वाणिजके दत्तं नेह नामुत्र तद् भवेत् ॥ १४ ॥

सोमरस बेचनेवालेको जो श्राद्धका अन्न दिया जाता है, वह पितरोंके लिये विष्टाके तुल्य है । श्राद्धमें वैद्यको जिमाया हुआ अन्न पीव और रक्तके समान पितरोंको अग्राह्य हो जाता है । देवमन्दिरमें पूजा करके जीविका चलानेवालेको दिया हुआ श्राद्धका दान नष्ट हो जाता है—

उसका कोई फल नहीं मिलता । सूदखोरको दिया हुआ अन्न अस्थिर होता है । वाणिज्यवृत्ति करनेवालेको श्राद्धमें दिये हुए अन्नका दान न इहलोकमें लाभदायक होता है और न परलोकमें ॥ १३-१४ ॥

भस्मनीच हुतं हव्यं तथा पौनर्भवे द्विजे ।
ये तु धर्मव्यपेतेषु चारित्र्यापगतेषु च ।
हव्यं कव्यं प्रयच्छन्ति तेषां तत्प्रेत्य नश्यति ॥ १५ ॥

एक पतिको छोड़कर दूसरा पति करनेवाली स्त्रीके पुत्रको दिया हुआ श्राद्धमें अन्नका दान राखमें डाले हुए हविष्यके समान व्यर्थ हो जाता है । जो लोग धर्मरहित और चरित्रहीन द्विजको हव्य-कव्यका दान करते हैं, उनका वह दान परलोकमें नष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

ज्ञानपूर्वं तु ये तेभ्यः प्रयच्छन्त्यल्पवुद्धयः ।
पुरीषं भुञ्जते तेषां पितरः प्रेत्य निश्चयः ॥ १६ ॥

जो मूर्ख मनुष्य ज्ञान-बुद्धकर वैसे पंक्तिदूषक ब्राह्मणोंको श्राद्धमें अन्नका दान करते हैं, उनके पितर परलोकमें निश्चय ही उनकी विष्टा खाते हैं ॥ १६ ॥

एतानिमान् विजानीयादपाङ्क्त्यान् द्विजाधमान् ।
शूद्राणामुपदेशं च ये कुर्वन्त्यल्पचेतसः ॥ १७ ॥

इन अधम ब्राह्मणोंको पंक्तिसे बाहर रखने योग्य जानना चाहिये । जो मूढ़ ब्राह्मण शूद्रोंको वेदका उपदेश करते हैं, वे भी अपाङ्क्त्य (अर्थात् पंक्ति-बाहर) ही हैं ॥ १७ ॥

षष्टिं काणः शतं षण्ढः श्वित्री यावत्प्रपश्यति ।
पङ्क्त्यां समुपविष्टायां तावद् दूषयते नृप ॥ १८ ॥

राजन् ! काना मनुष्य पंक्तिमें बैठे हुए साठ मनुष्योंको दूषित कर देता है । जो नपुंसक है, वह सौ मनुष्योंको अपवित्र बना देता है तथा जो सफेद कोढ़का रोगी है, वह बैठे हुए पंक्तिमें जितने लोगोंको देखता है, उन सबको दूषित कर देता है ॥ १८ ॥

यद् वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यद् भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ।
सोपानत्कश्च यद् भुङ्क्ते सर्वं विद्यात् तदासुरम् ॥ १९ ॥

जो सिरपर पगड़ी और टोपी रखकर भोजन करता है, जो दक्षिणकी ओर मुख करके खाता है तथा जो जूते पहने भोजन करता है, उनका वह सारा भोजन आसुर समझना चाहिये ॥ १९ ॥

असूयता च यद् दत्तं यच्च श्रद्धाविवर्जितम् ।
सर्वं तदसुरेन्द्राय ब्रह्मा भागमकल्पयत् ॥ २० ॥
जो दोषदृष्टि रखते हुए दान करता है और जो बिना श्रद्धाके देता है, उस सारे दानको ब्रह्माजीने असुर-राज बलिका भाग निश्चित किया है ॥ २० ॥

श्वानश्च पङ्क्तिदूषाश्च नावेक्षेरन् कथञ्चन ।
तस्मात् परिसृते दद्यात् तिलांश्चान्ववकीरयेत् ॥ २१ ॥

कुत्तों और पंक्तिदूषक ब्राह्मणोंकी किसी तरह दृष्टि न पड़े, इसके लिये सब ओरसे घिरे हुए स्थानमें श्राद्धका दान करे और वहाँ सब ओर तिल छींटे ॥ २१ ॥

तिलैर्विरहितं श्राद्धं कृतं क्रोधवशेन च ।
यातुधानाः पिशाचाश्च विप्रलुम्पन्ति तद्विः ॥ २२ ॥

जो श्राद्ध तिलोंसे रहित होता है, अथवा जो क्रोधपूर्वक किया जाता है, उसके हविष्यको यातुधान (राक्षस) और पिशाच लुप्त कर देते हैं ॥ २२ ॥

अपाङ्क्तो यावतः पाङ्क्तान् भुञ्जानाननुपश्यति ।
तावत्फलाद् भ्रंशयति दातारं तस्य वालिशम् ॥ २३ ॥

पंक्तिदूषक पुरुष पंक्तिमें भोजन करनेवाले जितने ब्राह्मणोंको देख लेता है, वह मूर्ख दाताको उतने ब्राह्मणोंके दानजनित फलसे वञ्चित कर देता है ॥ २३ ॥

इमे तु भरतश्रेष्ठ विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ।
ये त्वतस्तान् प्रवक्ष्यामि परीक्षस्वेह तान् द्विजान् ॥ २४ ॥

भरतश्रेष्ठ ! अब जिनका वर्णन किया जा रहा है, इन सबको पंक्तिपावन जानना चाहिये । इनका वर्णन इस लिये करूँगा कि तुम ब्राह्मणोंकी श्राद्धमें परीक्षा कर सको ॥ २४ ॥

विद्यावेदव्रतस्नाता ब्राह्मणाः सर्व एव हि ।
सदाचारपराश्चैव विज्ञेयाः सर्वपावनाः ॥ २५ ॥

विद्या और वेदव्रतमें स्नातक हुए समस्त ब्राह्मण यदि सदाचारमें तत्पर रहनेवाले हों तो उन्हें सर्वपावन जानना चाहिये ॥ २५ ॥

पाङ्क्त्यांस्तु प्रवक्ष्यामि ज्ञेयास्ते पङ्क्तिपावनाः ।
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ २६ ॥

अब मैं पाङ्क्त्य ब्राह्मणोंका वर्णन करूँगा । उन्हींको पंक्तिपावन जानना चाहिये । जो त्रिणाचिकेत नामक मन्त्रोंका जप करनेवाला, गार्हपत्य आदि पाँच अग्नियोंका सेवन करनेवाला, त्रिसुपर्ण नामक (त्रिसुपर्णमित्यादि-) मन्त्रोंका पाठ करनेवाला है तथा 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तैत्तिरीय-प्रसिद्ध शिक्षा आदि छहों अङ्गोंका ज्ञान रखनेवाला है ये सब पंक्तिपावन हैं ॥ २६ ॥

ब्रह्मदेयानुसंतानश्छन्दोगो ज्येष्ठसामगः ।
मातापित्रोर्यश्च वश्यः श्रोत्रियो दशपूरुषः ॥ २७ ॥

जो परम्परासे वेद या पराविद्याका ज्ञाता अथवा उपदेशक है, जो वेदके छन्दोग शाखाका विद्वान् है, जो ज्येष्ठ साममन्त्रका गायक, माता-पिताके वशमें रहनेवाला

और दस पीढ़ियोंसे श्रोत्रिय (वेदपाठी) है, वह भी पंक्तिपावन है ॥ २७ ॥

ऋतुकालाभिगामी च धर्मपत्नीषु यः सदा ।

वेदविद्याव्रतस्नातो विप्रः पङ्क्तिं पुनात्युत ॥ २८ ॥

जो अपनी धर्मपत्नियोंके साथ सदा ऋतुकालमें ही समागम करता है, वेद और विद्याके व्रतमें स्नातक हो चुका है, वह ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र कर देता है ॥ २८ ॥

अथर्वशिरसोऽध्येता ब्रह्मचारी यतव्रतः ।

सत्यवादी धर्मशीलः स्वकर्मनिरतश्च सः ॥ २९ ॥

जो अथर्ववेदके ज्ञाता, ब्रह्मचारी, नियमपूर्वक व्रतका पालन करनेवाले, सत्यवादी, धर्मशील और अपने कर्तव्य-कर्ममें तत्पर हैं, वे पुरुष पंक्तिपावन हैं ॥ २९ ॥

ये च पुण्येषु तीर्थेषु अभिषेककृतश्रमाः ।

मखेषु च समन्त्रेषु भवन्त्यवभृथप्लुताः ॥ ३० ॥

अक्रोधना ह्यचपलाः क्षान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।

सर्वभूतहिता ये च श्राद्धेष्वेतान् निमन्त्रयेत् ॥ ३१ ॥

जिन्होंने पुण्य तीर्थोंमें गोता लगानेके लिये श्रम-प्रयत्न किया है, वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान करके अवभृथ-स्नान किया है; जो क्रोधरहित, चपलता-रहित, क्षमाशील, मनको वंशमें रखनेवाले, जितेन्द्रिय और सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी हैं, उन्हीं ब्राह्मणोंको श्राद्धमें निमन्त्रित करना चाहिये ॥ ३०-३१ ॥

एतेषु दत्तमक्षय्यमेते वै पङ्क्तिपावनाः ।

इमे परे महाभागा विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ॥ ३२ ॥

क्योंकि ये पंक्तिपावन हैं; अतः इन्हें दिया हुआ दान अक्षय होता है। इनके सिवा दूसरे भी महान् भाग्यशाली पंक्तिपावन ब्राह्मण हैं, उन्हें इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

यतयो मोक्षधर्मज्ञा योगाः सुचरितव्रताः ।

(पाञ्चरात्रविदो मुख्यास्तथा भागवताः परे ।

वैखानसाः कुलश्रेष्ठा वैदिकाचारचारिणः ॥)

ये चेतिहासं प्रयताः श्रावयन्ति द्विजोत्तमान् ॥ ३३ ॥

ये च भाष्यविदः केचिद् ये च व्याकरणे रताः ।

अधीयते पुराणं ये धर्मशास्त्राण्यथापि च ॥ ३४ ॥

अधीत्य च यथान्यायं विधिवत् तस्य कारिणः ।

उपपन्नो गुरुकुले सत्यवादी सहस्रशः ॥ ३५ ॥

अग्न्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।

यावदेते प्रपश्यन्ति पङ्क्त्यास्तावत्पुनन्त्युत ॥ ३६ ॥

जो मोक्ष-धर्मका ज्ञान रखनेवाले संयमी और उत्तम प्रकारसे व्रतका आचरण करनेवाले योगी हैं, पाञ्चरात्र आगमके जाननेवाले श्रेष्ठ पुरुष हैं, परम भागवत हैं, वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाले, कुलमें श्रेष्ठ और वैदिक

आचारका अनुष्ठान करनेवाले हैं। जो मनको संयममें रखकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको इतिहास सुनाते हैं, जो महाभाष्य और व्याकरणके विद्वान् हैं तथा जो पुराण और धर्मशास्त्रोंका न्यायपूर्वक अध्ययन करके उनकी आज्ञाके अनुसार विधिवत् आचरण करनेवाले हैं, जिन्होंने नियमित समय-तक गुरुकुलमें निवास करके वेदाध्ययन किया है, जो परीक्षाके सहस्रों अवसरोंपर सत्यवादी सिद्ध हुए हैं तथा जो चारों वेदोंके पढ़ने-पढ़ानेमें अग्रगण्य हैं, ऐसे ब्राह्मण पंक्तिको जितनी दूर देखते हैं उतनी दूरमें बैठे हुए ब्राह्मणोंको पवित्र कर देते हैं ॥ ३३-३६ ॥

ततो हि पावनात्पङ्क्त्याः पङ्क्तिपावन उच्यते ।

क्रोशाद्धर्धतृतीयाञ्च पावयेद्देक एव हि ॥ ३७ ॥

ब्रह्मदेयानुसंतान इति ब्रह्मविदो विदुः ।

पंक्तिको पवित्र करनेके कारण ही उन्हें पंक्तिपावन कहा जाता है। ब्रह्मवादी पुरुषोंकी यह मान्यता है कि वेदकी शिक्षा देनेवाले एवं ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंके वंशमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण अकेला ही साढ़े तीन कोसतकका स्थान पवित्र कर सकता है ॥ ३७ ॥

अनुत्विगनुपाध्यायः स चेदग्रासनं व्रजेत् ॥ ३८ ॥

ऋत्विग्भिरभ्यनुज्ञातः पङ्क्त्या हरति दुष्कृतम् ।

जो ऋत्विक् या अध्यापक न हो, वह भी यदि ऋत्विजोंकी आज्ञा लेकर श्राद्धमें अग्रासन ग्रहण करता है तो पंक्तिके दोषको हर लेता है अर्थात् दूर कर देता है ॥

अथ चेद् वेदवित् सर्वैः पङ्क्तिदोषैर्विचर्जितः ॥ ३९ ॥

न च स्यात्पतितो राजन् पङ्क्तिपावन एव सः ।

राजन् ! यदि कोई वेदज्ञ ब्राह्मण सब प्रकारके पंक्ति-दोषोंसे रहित है और पतित नहीं हुआ है तो वह पंक्तिपावन ही है ॥ ३९ ॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन परीक्ष्यामन्त्रयेद् द्विजान् ॥ ४० ॥

स्वकर्मनिरतानन्यान् कुले जातान् बहुश्रुतान् ।

इसलिये सब प्रकारकी चेष्टाओंसे ब्राह्मणोंकी परीक्षा करके ही उन्हें श्राद्धमें निमन्त्रित करना चाहिये। वे स्वकर्ममें तत्पर रहनेवाले, कुलीन और बहुश्रुत होने चाहिये ॥ ४० ॥

यस्य मित्रप्रधानानि श्राद्धानि च हवींषि च ॥ ४१ ॥

न प्रीणन्ति पितृन् देवान् स्वर्गं च न स गच्छति ।

जिसके श्राद्धोंके भोजनमें मित्रोंकी प्रधानता रहती है, उसके वे श्राद्ध एवं हविष्य पितरों और देवताओंको तृप्त नहीं करते हैं तथा वह श्राद्धकर्ता पुरुष स्वर्गमें नहीं जाता है ॥ ४१ ॥

यश्च श्राद्धे कुरुते सङ्गतानि

न देवयानेन पथा स याति ।

स वै मुक्तः पिप्पलं बन्धनाद् वा
स्वर्गालोकाच्चयवते श्राद्धमित्रः ॥ ४२ ॥

जो मनुष्य श्राद्धमें भोजन देकर उससे मित्रता जोड़ता है, वह मृत्युके बाद देवमार्गसे नहीं जाने पाता। जैसे पीपलका फल डंठलसे टूटकर नीचे गिर जाता है, वैसे ही श्राद्धको मित्रताका साधन बनानेवाला पुरुष स्वर्गलोकसे भ्रष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥

तस्मान्मित्रं श्राद्धकृत्त्राद्रियेत
दद्यान्मित्रेभ्यः संग्रहार्थं धनानि ।
यन्मन्यते नैव शत्रुं न मित्रं
तं मध्यस्थं भोजयेद्धव्यकव्ये ॥ ४३ ॥

इसलिये श्राद्धकर्ताको चाहिये कि वह श्राद्धमें मित्रको निमन्त्रण न दे। मित्रोंको संतुष्ट करनेके लिये धन देना उचित है। श्राद्धमें भोजन तो उसे ही कराना चाहिये, जो शत्रु या मित्र न होकर मध्यस्थ हो ॥ ४३ ॥

यथोषरे बीजमुप्तं न रोहे-
न्न चावप्ता प्राप्नुयाद् बीजभागम् ।
एवं श्राद्धं भुक्तमनर्हमाणै-
र्न चेह नामुत्र फलं ददाति ॥ ४४ ॥

जैसे ऊसरमें बोया हुआ बीज न तो जमता है और न बोलनेवालेको उसका कोई फल ही मिलता है, उसी प्रकार अयोग्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया हुआ श्राद्धका अन्न न इस लोकमें लाभ पहुँचाता है, न परलोकमें ही कोई फल देता है ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै श्राद्धं न दातव्यं न हि भस्मनि ह्यते ॥ ४५ ॥

जैसे घास-फूसकी आग शीघ्र ही शान्त हो जाती है, उसी प्रकार स्वाध्यायहीन ब्राह्मण तेजहीन हो जाता है, अतः उसे श्राद्धका दान नहीं देना चाहिये, क्योंकि राखमें कोई भी हवन नहीं करता ॥ ४५ ॥

सम्भोजनी नाम पिशाचदक्षिणा
सा नैव देवान् न पितॄनुपैति ।
इहैव सा भ्राम्यति हीनपुण्या
शालान्तरे गौरिव नष्टवत्सा ॥ ४६ ॥

जो लोग एक-दूसरेके यहाँ श्राद्धमें भोजन करके परस्पर दक्षिणा देते और लेते हैं, उनकी वह दान-दक्षिणा पिशाच-दक्षिणा कहलाती है। वह न देवताओंको मिलती है, न पितरोंको। जिसका बलड़ा मर गया है ऐसी पुण्यहीन गौ जैसे दुखी होकर गोशालामें ही चक्कर लगाती रहती है, उसी प्रकार आपसमें दी और ली हुई दक्षिणा इसी लोकमें रह जाती है, वह पितरोंतक नहीं पहुँचने पाती ॥ ४६ ॥

यथाग्नौ शान्ते घृतमाजुहोति
तन्मैव देवान् न पितॄनुपैति ।
तथा दत्तं नर्तने गायने च
यां चानृते दक्षिणामावृणोति ॥ ४७ ॥
उभौ हिनस्ति न भुनक्ति चैषा
या चानृते दक्षिणा दीयते वै ।
आघातिनी गर्हितैषा पतन्ती
तेषां प्रेतान् पातयेद् देवयानात् ॥ ४८ ॥

जैसे आग बुझ जानेपर जो घृतका हवन किया जाता है, उसे न देवता पाते हैं, न पितर; उसी प्रकार नाचनेवाले, गवैये और झूठ बोलनेवाले अपात्र ब्राह्मणको दिया हुआ दान निष्फल होता है। अपात्र पुरुषको दी हुई दक्षिणा न दाताको वृत्त करती है न दान लेनेवालेको; प्रत्युत दोनोंका ही नाश करती है। यही नहीं, वह विनाशकारिणी निन्दित दक्षिणा दाताके पितरोंको देवयान-मार्गसे नीचे गिरा देती है ॥ ४७-४८ ॥

ऋषीणां समये नित्यं ये चरन्ति युधिष्ठिर ।
निश्चिताः सर्वधर्मज्ञास्तान् देवा ब्राह्मणान् विदुः ॥ ४९ ॥

युधिष्ठिर ! जो सदा ऋषियोंके बताये हुए धर्ममार्गपर चलते हैं, जिनकी बुद्धि एक निश्चयपर पहुँची हुई है तथा जो सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता हैं, उन्हींको देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं ॥ ४९ ॥

स्वाध्यायनिष्ठा ऋषयो ज्ञाननिष्ठास्तथैव च ।
तपोनिष्ठाश्च बोद्धव्याः कर्मनिष्ठाश्च भारत ॥ ५० ॥

भारत ! ऋषि-मुनियोंमें किन्हींको स्वाध्यायनिष्ठ, किन्हींको ज्ञाननिष्ठ, किन्हींको तपोनिष्ठ और किन्हींको कर्मनिष्ठ जानना चाहिये ॥ ५० ॥

कव्यानि ज्ञाननिष्ठेभ्यः प्रतिष्ठाप्यानि भारत ।
तत्र ये ब्राह्मणान् केचिन्न निन्दन्ति हि ते नराः ॥ ५१ ॥

भरतनन्दन ! उनमें ज्ञाननिष्ठ महर्षियोंको ही श्राद्धका अन्न जिमाना चाहिये। जो लोग ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करते, वे ही श्रेष्ठ मनुष्य हैं ॥ ५१ ॥

ये तु निन्दन्ति जल्पेषु न ताञ्छ्राद्धेषु भोजयेत् ।
ब्राह्मणा निन्दिता राजन् हन्युस्त्रैपुरुषं कुलम् ॥ ५२ ॥
वैखानसानां वचनमृषीणां श्रूयते नृप ।
दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणान् वेदपारगान् ॥ ५३ ॥

राजन् ! जो बातचीतमें ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, उन्हें श्राद्धमें भोजन नहीं कराना चाहिये। नरेश्वर ! वानप्रस्थ ऋषियोंका यह वचन सुना जाता है कि 'ब्राह्मणोंकी निन्दा होनेपर वे निन्दा करनेवालेकी तीन पीढ़ियोंका नाश कर डालते हैं।' वेदवेत्ता ब्राह्मणोंकी दूरसे ही परीक्षा करनी चाहिये ॥ ५२-५३ ॥

प्रियो वा यदि वा द्वेष्यस्तेषां तु श्राद्धमावपेत् ।

यः सहस्रं सहस्राणां भोजयेदनृतान् नरः ।

एकस्तान्मन्त्रवित् प्रीतः सर्वानर्हति भारत ॥ ५४ ॥

भारत ! वेदज्ञ पुरुष अपना प्रिय हो या अप्रिय—इसका विचार न करके उसे श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये । जो दस

लाख अपात्र ब्राह्मणको भोजन कराता है, उसके यहाँ उन सबके बदले एक ही सदा संतुष्ट रहनेवाला वेदज्ञ ब्राह्मण भोजन करनेका अधिकारी है अर्थात् लाखों मूखोंकी अपेक्षा एक सत्पात्र ब्राह्मणको भोजन कराना उत्तम है ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें श्राद्धकल्पविषयक नब्बेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९० ॥

(दाक्षिणात्य अधिक पाठका १ श्लोक मिलाकर कुल ५५ श्लोक हैं)

एकनवतितमोऽध्यायः

शोकातुर निमिका पुत्रके निमित्त पिण्डदान तथा श्राद्धके विषयमें निमिको महर्षि अत्रिका उपदेश, विश्वेदेवोंके नाम एवं श्राद्धमें त्याज्य वस्तुओंका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

केन संकल्पितं श्राद्धं कस्मिन् काले किमात्मकम् ।

भृग्वङ्गिरसिके काले मुनिना कतरेण वा ॥ १ ॥

कानि श्राद्धानि वर्ज्यानि कानि मूलफलानि च ।

धान्यजात्यश्च का वर्ज्यास्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह ! श्राद्ध कब प्रचलित हुआ ? सबसे पहले किस महर्षिने इसका संकल्प किया अर्थात् प्रचार किया ? श्राद्धका स्वरूप क्या है ? यदि भृगु और अङ्गिराके समयमें इसका प्रारम्भ हुआ तो किस मुनिने इसको प्रकट किया ? श्राद्धमें कौन-कौनसे कर्म, कौन-कौन फल-मूल और कौन-कौनसे अन्न त्याग देने योग्य हैं ? वह मुझसे कहिये ॥ १-२ ॥

भीष्म उवाच

यथा श्राद्धं सम्प्रवृत्तं यस्मिन् काले यदात्मकम् ।

येन संकल्पितं चैव तन्मे शृणु जनाधिप ॥ ३ ॥

भीष्मजीने कहा—राजन् ! श्राद्धका जिस समय और जिस प्रकार प्रचलन हुआ, जो इसका स्वरूप है तथा सबसे पहले जिसने इसका संकल्प किया अर्थात् प्रचार किया, वह सब तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ॥ ३ ॥

स्वायम्भुवोऽत्रिः कौरव्य परमर्षिः प्रतापवान् ।

तस्य वंशे महाराज दत्तात्रेय इति स्मृतः ॥ ४ ॥

कुरुनन्दन ! महाराज ! प्राचीन कालमें ब्रह्माजीसे महर्षि अत्रिकी उत्पत्ति हुई । वे बड़े प्रतापी ऋषि थे । उनके वंशमें दत्तात्रेयजीका प्रादुर्भाव हुआ ॥ ४ ॥

दत्तात्रेयस्य पुत्रोऽभून्निमिर्नाम तपोधनः ।

निमेश्चाप्यभवत् पुत्रः श्रीमान्नाम श्रिया वृतः ॥ ५ ॥

दत्तात्रेयके पुत्र निमि हुए, जो बड़े तपस्वी थे । निमिके भी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम था श्रीमान् । वह बड़ा कान्तिमान् था ॥ ५ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रान्ते स कृत्वा दुष्करं तपः ।

कालधर्मपरीतात्मा निधनं समुपागतः ॥ ६ ॥

उसने पूरे एक हजार वर्षोंतक बड़ी कठोर तपस्या करके अन्तमें काल-धर्मके अधीन होकर प्राण त्याग दिया ॥ ६ ॥

निमिस्तु कृत्वा शौचानि विधिदृष्टेन कर्मणा ।

सन्तापमगमत् तीव्रं पुत्रशोकपरायणः ॥ ७ ॥

फिर निमि शास्त्रोक्त कर्मद्वारा अशौच निवारण करके पुत्र-शोकमें मग्न हो अत्यन्त संतप्त हो उठे ॥ ७ ॥

अथ कृत्वोपहार्याणि चतुर्दश्यां महामतिः ।

तमेव गणयञ्शोकं विरात्रे प्रत्यबुध्यत ॥ ८ ॥

तदनन्तर परम बुद्धिमान् निमि चतुर्दशीके दिन श्राद्धमें देने योग्य सब वस्तुएँ एकत्रित करके पुत्रशोकसे ही चिन्तित हो रात बीतनेपर (अमावास्याको श्राद्ध करनेके लिये) प्रातःकाल उठे ॥ ८ ॥

तस्यासीत् प्रतिबुद्धस्य शोकेन व्यथितात्मनः ।

मनः संवृत्य विषये बुद्धिर्विस्तारगामिनी ॥ ९ ॥

ततः संचिन्तयामास श्राद्धकल्पं समाहितः ।

प्रातःकाल जागनेपर उनका मन पुत्रशोकसे व्यथित होता रहा; किंतु उनकी बुद्धि बड़ी विस्तृत थी । उसके द्वारा उन्होंने मनको शोककी ओरसे हटाया और एकाग्रचित्त होकर श्राद्धविधिका विचार किया ॥ ९ ॥

यानि तस्यैव भोज्यानि मूलानि च फलानि च ॥ १० ॥

उक्तानि यानि चान्नानि यानि चेष्टानि तस्य ह ।

तानि सर्वाणि मनसा विनिश्चित्य तपोधनः ॥ ११ ॥

फिर श्राद्धके लिये शास्त्रोंमें जो फल-मूल आदि भोज्य पदार्थ बताये गये हैं तथा उनमेंसे जो-जो पदार्थ उनके पुत्रको प्रिय थे, उन सबका मन-ही-मन निश्चय करके उन तपोधनने संग्रह किया ॥ १०-११ ॥

अमावास्यां महाप्राज्ञो विप्रानानाग्र्यपूजितान् ।

दक्षिणावर्तिकाः सर्वा बृन्मीः स्वयमथाकरोत् ॥ १२ ॥

तदनन्तर, उन महान् बुद्धिमान् मुनिने अमावस्याके दिन सातब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी पूजा की और उनके लिये स्वयं ही प्रदक्षिण भावसे मोड़े हुए कुशके आसन बनाकर उन्हें उनपर बिठाया ॥ १२ ॥

सप्त विप्रांस्ततो भोज्ये युगपत् समुपानयत् ।

ऋते च लवणं भोज्यं श्यामाकान्नं ददौ प्रभुः ॥ १३ ॥

प्रभावशाली निमिने उन सातोंको एक ही साथ भोजनके लिये अलोना सावाँ परोसा ॥ १३ ॥

दक्षिणाग्रास्ततो दर्भा विप्रेषु निवेशिताः ।

पादयोश्चैव विप्राणां ये त्वन्नमुपभुञ्जत ॥ १४ ॥

कृत्वा च दक्षिणाग्रान् वै दर्भान् स प्रयतः शुचिः ।

प्रददौ श्रीमतः पिण्डान् नामगोत्रमुदाहरन् ॥ १५ ॥

इसके बाद भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके पैरोंके नीचे आसनोपर उन्होंने दक्षिणाग्र कुश बिछा दिये और (अपने सामने भी) दक्षिणाग्र कुश रखकर पवित्र एवं सावधान हो अपने पुत्र श्रीमान्के नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए कुशोंपर पिण्डदान किया ॥ १४-१५ ॥

तत् कृत्वा स मुनिश्रेष्ठो धर्मसंकरमात्मनः ।

पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत् ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्राद्ध करनेके पश्चात् मुनिश्रेष्ठ निमि अपनेमें धर्मसंकरताका दोष मानकर (अर्थात् वेदमें पिता-पितामह आदिके उद्देश्यसे जिस श्राद्धका विधान है, उसको मैंने स्वेच्छासे पुत्रके निमित्त किया है—यह सोचकर) महान् पश्चात्तापसे संतप्त हो उठे और इस प्रकार चिन्ता करने लगे—॥ १६ ॥

अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम् ।

कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति ॥ १७ ॥

‘अहो ! मुनियोंने जो कार्य पहले कभी नहीं किया, उसे मैंने ही क्यों कर डाला ! मेरे इस मनमाने बर्तावको देखकर ब्राह्मणलोग मुझे अपने शापसे क्यों नहीं भस्म कर डालेंगे ?’ ॥

ततः संचिन्तयामास वंशकर्तारमात्मनः ।

ध्यातमात्रस्तथा चात्रिराजगाम तपोधनः ॥ १८ ॥

यह बात ध्यानमें आते ही उन्होंने अपने वंशप्रवर्तक महर्षि अत्रिका स्मरण किया । उनके चिन्तन करते ही तपोधन अत्रि वहाँ आ पहुँचे ॥ १८ ॥

अथात्रिस्तं तथा दृष्ट्वा पुत्रशोकेन कर्षितम् ।

भृशमाश्वासयामास वाग्भिरिष्टाभिरव्ययः ॥ १९ ॥

आनेपर जब अविनाशी अत्रिने निमिको पुत्रशोकसे व्याकुल देखा, तब मधुर वाणीद्वारा उन्हें बहुत आश्वासन दिया—॥

निमे संकल्पितस्तेऽयं पितृयज्ञस्तपोधन ।

मा ते भूद्भीः पूर्वदृष्टो धर्मोऽयं ब्रह्मणा स्वयम् ॥ २० ॥

‘तपोधन निमे ! तुमने जो यह पितृयज्ञ किया है, इससे डरो मत । सबसे पहले स्वयं ब्रह्माजीने इस धर्मका साक्षात्कार किया है ॥ २० ॥

सोऽयं स्वयम्भुविहितो धर्मः संकल्पितस्त्वया ।

ऋते स्वयम्भुवः कोऽन्यः श्राद्धेयं विधिमाहरेत् ॥ २१ ॥

‘अतः तुमने यह ब्रह्माजीके चलाये हुए धर्मका ही अनुष्ठान किया है । ब्रह्माजीके सिवा दूसरा कौन इस श्राद्ध-विधिका उपदेश कर सकता है ॥ २१ ॥

अथाख्यास्यामि ते पुत्र श्राद्धेयं विधिमुत्तमम् ।

स्वयम्भुविहितं पुत्र तत् कुरुष्व निबाध मे ॥ २२ ॥

‘बेटा ! अब मैं तुमसे स्वयम्भू ब्रह्माजीकी बतायी हुई श्राद्धकी उत्तम विधिका वर्णन करता हूँ, इसे सुनो और सुनकर इसी विधिके अनुसार श्राद्धका अनुष्ठान करो ॥ २२ ॥

कृत्वाग्नौकरणं पूर्वं मन्त्रपूर्वं तपोधन ।

ततोऽग्नयेऽथ सोमाय वरुणाय च नित्यशः ॥ २३ ॥

विश्वेदेवाश्च ये नित्यं पितृभिः सह गोचराः ।

तेभ्यः संकल्पिता भागाः स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ २४ ॥

‘तब तपोधन ! पहले वेदमन्त्रके उच्चारणपूर्वक अग्नौ-करण—अग्निकरणकी क्रिया पूरी करके अग्नि, सोम, वरुण और पितरोंके साथ नित्य रहनेवाले विश्वेदेवोंको उनका भाग सदा अर्पण करे । साक्षात् ब्रह्माजीने इनके भागोंकी कल्पना की है ॥ २३-२४ ॥

स्तोतव्या चेह पृथिवी निवापस्येह धारिणी ।

वैष्णवी काश्यपी चेति तथैवहाक्षयेति च ॥ २५ ॥

‘तदनन्तर श्राद्धकी आधारभूता पृथ्वीकी वैष्णवी, काश्यपी और अक्षया आदि नामोंसे स्तुति करनी चाहिये ॥ २५ ॥

उदकानयने चैव स्तोतव्यो वरुणो विभुः ।

ततोऽग्निश्चैव सोमश्च आप्याय्याविह तेऽनघ ॥ २६ ॥

‘अनघ ! श्राद्धके लिये जल लानेके लिये भगवान् वरुणका स्तवन करना उचित है । इसके बाद तुम्हें अग्नि और सोमको भी तृप्त करना चाहिये ॥ २६ ॥

देवास्तु पितरो नाम निर्मिता ये स्वयम्भुवा ।

उष्णपा ये महाभागास्तेषां भागाः प्रकल्पितः ॥ २७ ॥

‘ब्रह्माजीके ही उत्पन्न किये हुए कुछ देवता पितरोंके नामसे प्रसिद्ध हैं । उन महाभाग पितरोंको उष्णप भी कहते हैं । स्वयम्भूने श्राद्धमें उनका भाग निश्चित किया है ॥ २७ ॥

ते श्राद्धेनार्च्यमाना वै विमुच्यन्ते ह किल्बिषात् ।

सप्तकः पितृवंशस्तु पूर्वदृष्टः स्वयम्भुवा ॥ २८ ॥

‘श्राद्धके द्वारा उनकी पूजा करनेसे श्राद्धकर्ताके पितरों-

का पापसे उद्धार हो जाता है । ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जिन अग्निष्वाच आदि पितरोंको श्राद्धका अधिकारी बताया है, उनकी संख्या सात है ॥ २८ ॥

विश्वे चाग्निमुखा देवाः संख्याताः पूर्वमेव ते ।

तेषां नामानि वक्ष्यामि भागार्हणं महात्मनाम् ॥ २९ ॥

‘विश्वेदेवोंकी चर्चा तो मैंने पहले ही की है, उन सबका मुख अग्नि है। यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी उन महात्माओंके नामोंको कहता हूँ ॥ २९ ॥

बलं धृतिर्विपाप्मा च पुण्यकृत् पावनस्तथा ।

पार्ष्णिक्षेमा समूहश्च दिव्यसानुस्तथैव च ॥ ३० ॥

विवस्वान् वीर्यवान् ह्रीमान् कीर्तिमान् कृत एव च ।

जितात्मा मुनिवीर्यश्च दीप्तिरोमा भयंकरः ॥ ३१ ॥

अनुकर्मा प्रतीतश्च प्रदाताप्यंशुमांस्तथा ।

शैलाभः परमक्रोधी धीरोष्णी भूपतिस्तथा ॥ ३२ ॥

स्रजो वज्री वरी चैव विश्वेदेवाः सनातनाः ।

विद्युद्वर्चाः सोमवर्चाः सूर्यश्रीश्चेति नामतः ॥ ३३ ॥

सोमपः सूर्यसावित्रो दत्तात्मा पुण्डरीयकः ।

उष्णीनाभो नभोदश्च विश्वायुर्दीप्तिरेव च ॥ ३४ ॥

चमूहरः सुरेशश्च व्योमारिः शङ्करो भवः ।

ईशः कर्ता कृतिर्दक्षो भुवनो दिव्यकर्मकृत् ॥ ३५ ॥

गणितः पञ्चवीर्यश्च आदित्यो रश्मिवांस्तथा ।

सप्तकृत् सोमवर्चाश्च विश्वकृत् कविरेव च ॥ ३६ ॥

अनुगोप्ता सुगोप्ता च नप्ता चेश्वर एव च ।

कीर्तितास्ते महाभागाः कालस्य गतिगोचराः ॥ ३७ ॥

‘बल, धृति, विपाप्मा, पुण्यकृत्, पावन, पार्ष्णिक्षेमा, समूह, दिव्यसानु, विवस्वान्, वीर्यवान्, ह्रीमान्, कीर्तिमान्, कृत, जितात्मा, मुनिवीर्य, दीप्तिरोमा, भयंकर, अनुकर्मा, प्रतीत, प्रदाता, अंशुमान्, शैलाभ, परमक्रोधी, धीरोष्णी, भूपति, स्रज, वज्री, वरी, विश्वेदेव, विद्युद्वर्चा, सोमवर्चा, सूर्यश्री, सोमप, सूर्यसावित्र, दत्तात्मा, पुण्डरीयक, उष्णीनाभ, नभोद्, विश्वायु, दीप्ति, चमूहर, सुरेश, व्योमारि, शंकर, भव, ईश, कर्ता कृति, दक्ष, भुवन, दिव्यकर्मकृत्, गणित, पञ्चवीर्य, आदित्य, रश्मिवान्, सप्तकृत्, सोमवर्चा, विश्वकृत्, कवि, अनुगोप्ता, सुगोप्ता, नप्ता और ईश्वर । इस प्रकार सनातन विश्वेदेवोंके नाम बतलाये गये । ये महाभाग कालकी गतिके जाननेवाले कहे गये हैं ॥ ३०—३७ ॥

अश्राद्धेयानि धान्यानि कोद्रवाः पुलकास्तथा ।

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें श्राद्धकल्पविषयक इक्यानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९१ ॥

हिंशुद्रव्येषु शाकेषु पलाण्डुं लसुनं तथा ॥ ३८ ॥

सौभाजनः कोविदारस्तथा गृध्रनकादयः ।

कूष्माण्डजात्यलाबुं च कृष्णं लवणमेव च ॥ ३९ ॥

ग्राम्यवाराहमांसं च यच्चैवाप्रोक्षितं भवेत् ।

कृष्णाजाजी विडश्चैव शीतपाकी तथैव च ।

अङ्कुराद्यास्तथा वर्ज्या इह शृङ्गाटकानि च ॥ ४० ॥

‘अब श्राद्धमें निषिद्ध अन्न आदि वस्तुओंका वर्णन करता हूँ । अनाजमें कोदो और पुलक-सरसो, हिंशुद्रव्य-छौंकनेके काम आनेवाले पदार्थोंमें हींग आदि पदार्थ, शाकोंमें प्याज, लहसुन, सहिजन, कचनार, गाजर, कुम्हडा और लौकी आदि; कालानमक, गाँवमें पैदा होनेवाले वाराहीकन्द-का गूदा, अप्रोक्षित—जिसका प्रोक्षण नहीं किया गया (संस्कार-हीन), काला जीरा, बीरिया सौंकर नमक, शीतपाकी (शाक-विशेष), जिसमें अङ्कुर उत्पन्न हो गये हों ऐसे मूँग और सिंघाड़ा आदि । ये सब वस्तुएँ श्राद्धमें वर्जित हैं ॥ ३८—४० ॥

वर्जयेल्लवणं सर्वं तथा जम्बूफलानि च ।

अवश्रुतावरुदितं तथा श्राद्धे च वर्जयेत् ॥ ४१ ॥

‘सब प्रकारका नमक, जामुनका फल तथा छौंक या आँसूसे दूषित हुए पदार्थ भी श्राद्धमें त्याग देने चाहिये ॥ ४० ॥

निवापे हव्यकव्ये वा गर्हितं च सुदर्शनम् ।

पितरश्च हि देवाश्च नाभिनन्दन्ति तद्धविः ॥ ४२ ॥

‘श्राद्ध-विषयक हव्य-कव्यमें सुदर्शनसोमलता निन्दित है । उस हविको विश्वेदेव एवं पितृगण पसंद नहीं करते हैं ॥

चाण्डालश्चपचौ वर्ज्यौ निवापे समुपस्थिते ।

काषायवासाः कुष्ठी वा पतितो ब्रह्महापि वा ॥ ४३ ॥

संकीर्णयोनिर्विप्रश्च सम्बन्धी पतितश्च यः ।

वर्जनीया बुधैरेते निवापे समुपस्थिते ॥ ४४ ॥

‘पिण्डदानका समय उपस्थित होनेपर उस स्थानसे चाण्डालों और श्वपचोंको हटा देना चाहिये । गेरुआ वस्त्र धारण करनेवाला संन्यासी, कोढ़ी, पतित, ब्रह्महत्यारा, वर्ण-संकर ब्राह्मण तथा धर्मभ्रष्ट सम्बन्धी भी श्राद्धकाल उपस्थित होनेपर विद्वानोंद्वारा वहाँसे हटा देने योग्य हैं ॥ ४३-४४ ॥

इत्येवमुक्त्वा भगवान् स्ववंश्यं तमृषिं पुरा ।

पितामहसभां दिव्यां जगामात्रिस्तपोधनः ॥ ४५ ॥

पूर्वकालमें अपने वंशज निमि ऋषिको श्राद्धके विषयमें यह उपदेश देकर तपस्याके धनी भगवान् अत्रि ब्रह्माजीकी दिव्य सभामें चले गये ॥ ४५ ॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

पितर और देवताओंका श्राद्धान्नसे अजीर्ण होकर ब्रह्माजीके पास जाना और अग्निके द्वारा अजीर्णका निवारण, श्राद्धसे तृप्त हुए पितरोंका आशीर्वाद

भीष्म उवाच

तथा निमौ प्रवृत्ते तु सर्व एव महर्षयः ।
पितृयज्ञं तु कुर्वन्ति विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ १ ॥

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! इस प्रकार जब महर्षि निमि पहले-पहल श्राद्धमें प्रवृत्त हुए, उसके बाद सभी महर्षि शास्त्रविधिके अनुसार पितृयज्ञका अनुष्ठान करने लगे ॥ १ ॥

ऋषयो धर्मनित्यास्तु कृत्वा निवपनान्युत ।
तर्पणं चाप्यकुर्वन्त तीर्थाम्भोभिर्यतव्रताः ॥ २ ॥

सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले और नियमपूर्वक व्रत धारण करनेवाले महर्षि पिण्डदान करनेके पश्चात् तीर्थके जलसे पितरोंका तर्पण भी करते थे ॥ २ ॥

निवापैर्दीयमानैश्च चातुर्वर्ण्येन भारत ।
तर्पिताः पितरो देवास्तत्रान्नं जरयन्ति वै ॥ ३ ॥
अजीर्णैस्त्वभिहन्यन्ते ते देवाः पितृभिः सह ।
सोममेवाभ्यपद्यन्त तदा ह्यन्नाभिपीडिताः ॥ ४ ॥

भारत ! धीरे-धीरे चारों वर्णोंके लोग श्राद्धमें देवताओं और पितरोंको अन्न देने लगे । लगातार श्राद्धमें भोजन करते-करते वे देवता और पितर पूर्ण तृप्त हो गये । अब वे अन्न पचानेके प्रयत्नमें लगे । अजीर्णसे उन्हें विशेष कष्ट होने लगा । तब वे सोम देवताके पास गये ॥ ३-४ ॥

तेऽब्रुवन् सोममासाद्य पितरोऽजीर्णपीडिताः ।
निवापान्नेन पीड्यामः श्रेयो नोऽत्र विधीयताम् ॥ ५ ॥

सोमके पास जाकर वे अजीर्णसे पीडित पितर इस प्रकार बोले—‘देव ! हम श्राद्धान्नसे बहुत कष्ट पारहे हैं । अब आप हमारा कल्याण कीजिये’ ॥ ५ ॥

तान् सोमः प्रत्युवाचाथ श्रेयश्चेदीप्सितं सुराः ।
स्वयम्भूसदनं यात स वः श्रेयोऽभिधास्यति ॥ ६ ॥

तब सोमने उनसे कहा—‘देवताओ ! यदि आप कल्याण चाहते हैं तो ब्रह्माजीकी शरणमें जाइये, वही आपलोगोंका कल्याण करेंगे’ ॥ ६ ॥

ते सोमवचनाद् देवाः पितृभिः सह भारत ।
मेरुशृङ्गे समासीनं पितामहमुपागमन् ॥ ७ ॥

भरतनन्दन ! सोमके कहनेसे वे पितरोंसहित देवता मेरुपर्वतके शिखरपर विराजमान ब्रह्माजीके पास गये ॥ ७ ॥

पितर ऊचुः

निवापान्नेन भगवन् भृशं पीड्यामहे वयम् ।

प्रसादं कुरु नो देव श्रेयो नः संविधीयताम् ॥ ८ ॥

पितरोंने कहा—भगवन् ! निरन्तर श्राद्धका अन्न खानेसे हम अजीर्णतावश अत्यन्त कष्ट पा रहे हैं । देव ! हमलोगोंपर कृपा कीजिये और हमें कल्याणके भागी बनाइये ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा स्वयम्भूरिदमब्रवीत् ।
एष मे पाश्वर्तो वह्निर्युष्मच्छ्रेयोऽभिधास्यति ॥ ९ ॥

पितरोंकी यह बात सुनकर स्वयम्भू ब्रह्माजीने इस प्रकार कहा—‘देवगण ! मेरे निकट ये अग्निदेव विराजमान हैं । ये ही तुम्हारे कल्याणकी बात बतायेंगे’ ॥ ९ ॥

अग्निरुवाच

सहितास्तात भोक्ष्यामो निवापे समुपस्थिते ।
जरयिष्यथ चाप्यन्नं मया सार्धं न संशयः ॥ १० ॥

अग्नि बोले—देवताओ और पितरों ! अबसे श्राद्धका अवसर उपस्थित होनेपर हमलोग साथ ही भोजन किया करेंगे । मेरे साथ रहनेसे आपलोग उस अन्नको पचा सकेंगे, इसमें संशय नहीं है ॥ १० ॥

एतच्छ्रुत्वा तु पितरस्ततस्ते विज्वराऽभवन् ।
एतस्मात् कारणाच्चाग्नेः प्राक् तावद् दीयते नृप ॥ ११ ॥

नरेश्वर ! अग्निकी यह बात सुनकर वे पितर निश्चिन्त हो गये; इसीलिये श्राद्धमें पहले अग्निको ही भाग अर्पित किया जाता है ॥ ११ ॥

निवसे चाग्निपूर्वं वै निवापे पुरुषर्षभ ।
न ब्रह्मराक्षसास्तं वै निवापं धर्षयन्त्युत ॥ १२ ॥

पुरुषप्रवर ! अग्निमें हवन करनेके बाद जो पितरोंके निमित्त पिण्डदान दिया जाता है, उसे ब्रह्मराक्षस दूषित नहीं करते ॥ १२ ॥

रक्षांसि चापवर्तन्ते स्थिते देवे हुताशने ।
पूर्वं पिण्डं पितुर्दद्यात् ततो दद्यात् पितामहे ॥ १३ ॥

अग्निदेवके विराजमान रहनेपर राक्षस वहाँसे भाग जाते हैं । सबसे पहले पिताको पिण्ड देना चाहिये, फिर पितामहको ॥ १३ ॥

प्रपितामहाय च तत एष श्राद्धविधिः स्मृतः ।
ब्रूयाच्छ्राद्धे च सावित्रीं पिण्डे पिण्डे समाहितः ॥ १४ ॥

तदनन्तर प्रपितामहको पिण्ड देना चाहिये । यह श्राद्धकी विधि बतायी गयी है । श्राद्धमें एकाम्रचित्त हो प्रत्येक पिण्ड देते समय गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये ॥ १४ ॥

सोमायेति च वक्तव्यं तथा पितृमतेति च ।

रजस्वला च या नारी व्यङ्गिता कर्णयोश्च या ।

निवापे नोपतिष्ठेत संग्राह्या नान्यवंशजा ॥ १५ ॥

पिण्ड-दानके आरम्भमें पहले अग्नि और सोमके लिये जो दो भाग दिये जाते हैं, उनके मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं—‘अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा,’ ‘सोमाय पितृमते स्वाहा।’ जो स्त्री रजस्वला हो अथवा जिसके दोनों कान बहरे हों, उसको श्राद्धमें नहीं ठहरना चाहिये। दूसरे वंशकी स्त्रीको भी श्राद्धकर्ममें नहीं लेना चाहिये ॥ १५ ॥

जलं प्रतरमाणश्च कीर्तयेत पितामहान् ।

नदीमासाद्य कुर्वीत पितृणां पिण्डतर्पणम् ॥ १६ ॥

जलको तैरते समय पितामहों (के नामों) का कीर्तन करे। किसी नदीके तटपर जानेके बाद वहाँ पितरोंके लिये पिण्डदान और तर्पण करना चाहिये ॥ १६ ॥

पूर्वं स्ववंशजानां तु कृत्वाद्भिस्तर्पणं पुनः ।

सुहृत्सम्बन्धिवर्गाणां ततो दद्याज्जलाञ्जलिम् ॥ १७ ॥

पहले अपने वंशमें उत्पन्न पितरोंका जलके द्वारा तर्पण करके तत्पश्चात् सुहृद् और सम्बन्धियोंके समुदायको जलाञ्जलि देनी चाहिये ॥ १७ ॥

कल्माषगोयुगेनाथ युक्तेन तरतो जलम् ।

पितरोऽभिलषन्ते वै नावं चाप्यधिरोहिताः ॥ १८ ॥

जो चितकबरे रंगके बैलोंसे जुती गाड़ीपर बैठकर नदीके जलको पार कर रहा हो, उसके पितर इस समय मानो नावपर बैठकर उससे जलाञ्जलि पानेकी इच्छा रखते हैं ॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि श्राद्धकल्पे द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें श्राद्धकल्पविषयक बानवेवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९२ ॥

सदा नावि जलं तज्ज्ञाः प्रयच्छन्ति समाहिताः ।

मासार्धे कृष्णपक्षस्य कुर्यान्निर्वपणानि वै ॥ १९ ॥

पुष्टिरायुस्तथा वीर्यं श्रीश्चैव पितृभक्तितः ।

अतः जो इस बातको जानते हैं, वे एकाग्रचित्त हो नावपर बैठनेपर सदा ही पितरोंके लिये जल दिया करते हैं। महीनेका आधा समय बीत जानेपर कृष्णपक्षकी अमावास्या तिथिको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये। पितरोंकी भक्तिसे मनुष्य को पुष्टि, आयु, वीर्य और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ १९ ॥

पितामहः पुलस्त्यश्च वसिष्ठः पुलहस्तथा ॥ २० ॥

अङ्गिराश्च क्रतुश्चैव कश्यपश्च महानृषिः ।

एते कुरुकुलश्रेष्ठ महायोगेश्वराः स्मृताः ॥ २१ ॥

एते च पितरो राजन्नेष श्राद्धविधिः परः ।

कुरुकुलश्रेष्ठ ! ब्रह्मा, पुलस्त्य, वसिष्ठ, पुलह, अङ्गिरा, क्रतु और महर्षि कश्यप—ये सात ऋषि महान्, योगेश्वर और पितर माने गये हैं। राजन् ! इस प्रकार यह श्राद्धकी उत्तम विधि बतायी गयी ॥ २०-२१ ॥

प्रेतास्तु पिण्डसम्बन्धान्मुच्यन्ते तेन कर्मणा ॥ २२ ॥

इत्येषा पुरुषश्रेष्ठ श्राद्धोत्पत्तिर्यथागमम् ।

व्याख्याता पूर्वनिर्दिष्टा दानं वक्ष्याम्यतः परम् ॥ २३ ॥

प्रेत (मरे हुए पिता आदि) पिण्डके सम्बन्धसे प्रेतत्वके कष्टसे छुटकारा पा जाते हैं। पुरुषश्रेष्ठ ! यह मैंने शास्त्रके अनुसार तुम्हें पूर्वमें बताये श्राद्धकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक बताया है। अब दानके विषयमें बताऊँगा ॥ २२-२३ ॥